शहादत या क़ुर्बानी

उमदतुल उलमा मौलाना सैय्यद कल्बे हुसैन साहब क़िब्ला
अनुवादक– काज़िम महदी

इस ज़माने से पहले भी शहादत का लफ्ज़ अक्सर इन्सान के लिए इस्तेमाल किया गया है और अब भी इस लफ्ज़ का इस्तेमाल हक़ को देखे बग़ैर आम हो चुका है। ख़ुद अपनी ग़लतकारियों की बदौलत कोई क़त्ल हुआ और दुनिया ने उसको शहीद का लक़ब बड़े शौक़ से अता कर दिया। किसी मामूली बात पर दो आदमियों में झगड़ा हुआ जिसमें कोई एक मर गया और फौरन शहीद बताकर दुनिया के सामने पेश कर दिया गया। यही वजह है कि आज स्ट्राइक के शहीद, पिकटिंग के शहीद, ग़दर के शहीद, ज़मीनदारी के शहीद, इश्क़ व मुहब्बत के शहीद हर गली कूचे में बहुत से नज़र आ रहे हैं जिनकी कोई गिनती नहीं। लेकिन हक़ीक़त यह है कि उनमें से कोई एक भी शहादत के लक़ब का हक़दार नहीं। यह तो कहा जा सकता है कि फलाँ शख़्स ने अपनी क़ुर्बानी पेश कर दी मगर वह भी सिर्फ उसी वक़्त कि जब कोई शख़्स जानबूझ कर किसी सही ग़रज़ के लिए अपनी जान की क़ुर्बानी पेश कर दे।

ऐसी क़ुर्बानियाँ पेश करने वालों में भी यह देख लेना ज़रूरी है कि ग़रज़ क्या थी और सच्चाई थी या नहीं। मगर हर क़ुर्बानी को शहादत कह देना बिलकुल ग़लत है। शहादत सिर्फ वही है जो ख़ुदा की मर्ज़ी के मुताबिक़ और मज़हब की हद के अन्दर हो। इसी नुक़्त–ए–नज़र से हम सिर्फ उन्हीं को शहीद कह सकते हैं जो रसूल या इमाम की इजाज़त से जिहाद करें या ग़ैबते इमाम में बचाव करने यानी दीन व मज़हब की हिफाज़त या इज़्ज़त व जान की हिफाज़त में ज़ुल्म व सितम सहते हुए क़त्ल हो जाएँ।

यही वजह है कि चाहे तमाम दुनिया की नज़र में शहीदों की गिनती बेपनाह हो जाए मगर हमारी नज़र में शहीदों की तादाद बहुत कम है।

जो असल में शहीद हैं उनमें भी हालात के लेहाज़ से, ग़रज़ के एतबार से, फायदों की बुनियाद पर, शहादत के तरीक़े पर नज़र करके दरजात में बुलन्दी और पस्ती होती है। यक़ीनन वह भी शहीद हैं जो इमाम या रसूल के साथ मैदाने जंग में अकेले आए और क़त्ल हुए और वह भी शहीद हैं जिनको दीन के दुश्मनों ने सिर्फ सच्चे मज़हब से दुश्मनी की वजह से क़त्ल कर दिया या दीवारों में चुन दिया या भूखा प्यासा रखकर मार डाला। शहीद वह भी हैं जो दीन की मदद करने में अचानक क़त्ल कर दिये गये और उनको सोचने समझने का कोई मौक़ा न मिला। मगर उनकी शहादतें इतनी बलन्द न थीं जितनी उन लोगों की शहादत जो मैदान में अकेले न थे बल्कि घर वाले और रिश्तेदार व औलाद सब साथ थे।

पहले उन राहे ख़ुदा के शहीदों ने अपने तमाम रिश्तेदारों की शहादत पेश की। उनकी लाशें उठायीं और उसके बाद ख़ुद ख़ुदा के रास्ते

में अपनी कुर्बानी पेश की। इन लोगों की शहादत अचानक भी न थी। जैसे कोई किसी को गोली मार दे और वह शख़्स क़त्ल हो जाए बल्कि बचाव का रास्ता सामने मौजूद था मगर ख़ुदा की मर्ज़ी पर जान देने वालों ने बचाव पर अपने क़त्ल को आगे रखा।

इन्हीं तमाम वजहों की बुनियाद पर हमारा ईमान है कि आदम (अ0) के वक़्त से लेकर इस वक़्त तक ऐसी कोई शहादत दुनिया का कोई इन्सान पेश नहीं कर सकता जो शहादते हुसैनी के बराबर या उससे बलन्द हो सके और हमको यक़ीन है कि आगे भी दुनिया की आख़री उम्र तक ज़माना कोई ऐसी शहादत न पेश कर सकेगा जो हुसैनी शहादत के मुक़ाबले में आ सके।

ऐसे मरने वालों को तो हम शहीद ही नहीं जानते जो इश्क़ व मुहब्बत के झगड़ों में मारे गये। ज़मीनदारी के सिलसिले में क़त्ल हुए या आपस के ख़ानदानी झगड़ों में हलाक हुए या मुल्क जीतने या हुकूमतें हासिल करने या सियासी इख़्तेलाफात में मार डाले गये। दुनियावी नुक़त–ए–नज़र से कितने ही ऊँचे दर्जे वाले क्यों न क़रार दे दिये जाएँ मगर शियों का नज़रिया जिस तरह तौहीद में, रिसालत में, इमामत में, दोबारा ज़िन्दा होने में, लीडरी में तमाम दुनिया के नज़रियों से बहुत ज़्यादा पाक व साफ और बेहद बलन्द है उसी तरह शहादत में भी हमारी बलन्द निगाही तक और कोई नहीं पहुँच सकता। ऊपर बताये गये किसी तरह के क़त्ल को हम शहादत कहने पर तैय्यार नहीं बल्कि कुछ हालात में तो हम ऐसे लोगों को मज़हब की निगाह से तारीफ के क़ाबिल भी नहीं कह सकते। मगर पिछले लोगों में जनाबे ज़करिया (अ0), जनाब यहया (अ0) या दूसरे नबी जो शहीद हुए उनको हम यक़ीनन क़ाबिले अज़मत समझते हैं मगर उनकी शहादत भी हुसैनी शहादत से टक्कर नहीं ले सकती क्योंकि न उन शहीदों के सामने बचाव की सूरत थी न घर वाले थे, न वह हालात व माहौल था जिसने हुसैनी शहादत को बलन्द कर दिया। इसी तरह बद्र व ओहद के शहीद, ख़ैबर व हुनैन या जंगे जमल व सिफ़्फ़ीन में जो रसूल (स0) और अली (अ0) की इजाज़त से मैदाने जंग में आए, शहीद हैं और बहुत बलन्द दर्जे वाले हैं लेकिन आशूर के शहीद कुछ और ही हैं। यक़ीनन तमाम मुसलमानों के नज़दीक इसमें कोई इन्कार नहीं कि जनाब हमज़ा सैय्यदुश्शोहदा थे और ख़ुद अमीरुलमोमिनीन ने भी आपको सैय्यदुश्शोहदा फ़रमाया है मगर जब इमाम हुसैन (अ0) के मुक़ाबले में जनाब हमज़ा को लाया जाए तो शहीदों के सरदार का ताज जनाब हमज़ा ख़ुशी से अपने इस नवासे की ख़िदमत में पेश कर देंगे कि सबके मुक़ाबले में मैं सैय्यदुश्शोहदा लेकिन ऐ हुसैन (अ0)! आपके मुक़ाबले में तो मैं सर झुका के क़बूल करने को तैय्यार कि आप मेरे भी सरदार हैं। यक़ीनन आपको ख़ुदा ने, रसूल ने, तमाम ईमान वालों ने सैय्यदुश्शोहदा क़रार दे दिया यानी जिस तरह बनीइस्राईल के लिए एक जगह नहीं क़ुर्आन ने कई जगहों पर कहा कि अल्लाह ने बनीइस्राईल को तमाम दुनिया पर फ़ज़ीलत दी मगर इसके माने यह नहीं कि तमाम बनीइस्राईल उम्मते मरहूमा मुहम्मदिया से भी बेहतर बल्कि हमारे रसूल और इमामों से भी अफ़ज़ल, बल्कि अहमियत का मक़सद यक़ीनन यह था कि अपने ज़माने वालों से बेहतर। इसी तरह हमज़ा के सैय्यदुश्शोहदा होने के यह माने हरगिज़ नहीं

कि अपने बाद वालों में भी सबके सरदार बल्कि सिर्फ अपने ज़माने वालों के सरदार। मगर जब दौरे जनाब हमज़ा गुज़र गया और अमीरुलमोमिनीन और इमाम हसन (अ0) का दौर आया तो हमज़ा उन लोगों के सरदार हरगिज़ न थे और इमाम हुसैन (अ0) की शहादत तो इतनी बलन्द थी कि जहाँ तक जनाब हमज़ा की निगाह की पहुँच ही न थी।

इसलिए तमाम शहीदों से बेहतर कि शहादत की ग़रज़ (यानी दीन की हिफाज़त) बेहद बलन्द थी, इसलिए तमाम शहीदों से अफज़ल कि जो फ़ायदे इस शहादत से हासिल हुए वह किसी एक शहीद की शहादत से हासिल न हुए, इसलिए तमाम शहीदों से अफ़ज़ल कि बचाव का रास्ता (यानी बैअत) खुला हुआ था जिसके बाद जान बच सकती थी बल्कि अगर 'अल्लाह की पनाह' इमाम हुसैन (अ0) यज़ीद के कामों में रवादारी इख़्तियार कर लेते तो यक़ीनन दुनियावी ज़िन्दगी बड़ी राहत व आराम और ऐश से गुज़रती बल्कि अगर यज़ीद के साथ हम प्याला व हम निवाला न भी होते सिर्फ बैअत करके यह वक़्त टाल देते और मुनासिब मौक़ा और महल पर दोबारा मुक़ाबला करते जैसा कि इस ज़माने का तरीक़ा और सियासत यही है तो भी शहादत टल सकती थी मगर बचाव की सूरत मौजूद होने के बाद भी शहादत को इख़्तियार फ़रमाना वह बलन्द मन्ज़िल थी जहाँ दूसरों की पहुँच न हो सकी। फिर यह सूरत भी न थी कि सोचने समझने और जानबूझ कर शहादत मन्ज़ूर करने या ना करने का मौक़ा न मिला हो और ग़फ़लत में किसी ने हमला कर दिया हो क्योंकि मुहर्रम के दस दिन में हर पहलू पर काफ़ी ग़ौर कर लेने के लिए काफी वक़्त था इसलिए उन तमाम शहीदों की कोई हस्ती इमाम हुसैन (अ0) के मुक़ाबले में नहीं रहती जिनको किसी ने अचानक गोली मार दी हो। इसी के साथ बड़े सब्र व सुकून व इत्मिनान के साथ पहले अपने दोस्तों को फिर अपनी रिश्तेदारों को कुर्बानी के मैदान में पेश कर देना जंग जीतने वाली सूरत को छोड़कर एक–एक को मैदाने जंग में भेजना, और इसी अन्दाज़ से तमाम रिश्तेदार, क़रीबी, भाँजों, भतीजों, भाईयों, नौजवान बेटों के बाद छः माह के बच्चे को गोद में लेकर सब्र व सुकून का मन्ज़र पेश करना और जब कोई बाक़ी न रहा तो औरतों, बच्चों, बेटों, बेटियों को खुदा की मर्ज़ी पर राज़ी रहने की तालीम देके रुख़सत करना और अकेले मैदाने जंग में आकर ताक़त के हिसाब से ज़ाहिरी जिहाद करके शहादत की मन्ज़िलों में सर झुका देना यही वह बुलन्दतरीन मन्ज़र थे जिनको न किसी आँख ने देखा और न किसी कान ने सुना इसलिए हम कहते हैं और एलानिया तौर पर कहते हैं कि हुसैन की शहादत की न कोई मिसाल पूरी दुनिया में नज़र आयी और न क़यामत तक नज़र आयगी। हमारी नज़र में यह कहना हुसैन की शहादत की बड़ी से बड़ी नाक़द्री है कि ''इस्लाम ज़िन्दा होता है हर कर्बला के बाद'' ख़ुदा की क़सम आदम के वक़्त से 61 हि0 तक न पहले कोई कर्बला बनी और न आज तक कोई कर्बला बन सकी और न दुनिया की उम्र की आख़री मन्ज़िल तक कोई कर्बला बनेगी इसलिए हुसैनी शायर फज़ल का यह कहना बिलकुल ठीक है कि ''इस्लाम ज़िन्दा होता है बस कर्बला के बाद''

